ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 89-92**
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

प्राचीन कालीन भारतीय अर्थव्यवस्था में नारियों की भूमिकाः एक अनुशीलन

1. डॉ0 पूनम पाण्डेय
2. प्रफुल्ल चंद्र त्रिपाठी

1. सहायक आचार्य–हिन्दी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, (म0प्र0) 2. प्राध्यापक, मेंध्दावल, संतकबीरनगर, (उ0प्र0) भारत

Received-06.04.2025, Revised-12.04.2025, Accepted-18.04.2025 **E-mail : poonampandeysid@gmail.com**

सारांशः किसी सभ्यता की आत्मा को समझने तथा उसकी उपलब्धियों एवं श्रेष्ठता का मूल्यांकन करने का सर्वोत्तम आधार उसमें स्त्रियों की दशा का अध्ययन करना है। किसी भी समुदाय का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण समाज की प्रगतिशील चेतना को दर्शाता है। इतिहास पर नारियों के संदर्भ में दृष्टिपात करते हैं तो विदित होता है कि भारतीय समाज में उनका सम्मान और आदर प्राचीन काल से आदर्शात्मक और मर्यादायुक्त था। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर स्पष्ट होता है कि सैंधव सभ्यता में महिलाओं का समाज में विशिष्ट स्थान था और उस समाज में स्त्रीरूप ही पूजनीय था तथा यहाँ का समाज मातृसत्तात्मक था और राज्य व सम्पत्ति का उत्तराधिकार कन्याओं को मिलता था। ऋग्वैदिक कालीन समाज में भी स्त्रियों की दशा काफी अच्छी थी। उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त होने के साथ–साथ उनकी शिक्षा–दीक्षा की भी समुचित व्यवस्था की जाती थी। ऋग्वेद में घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा आदि स्त्रियों का उल्लेख आता है, जो श्रेष्ठ विदुषी थीं और जिन्होंने अनेक मंत्रों की रचना किया था। उत्तर वैदिक काल एवं महाकाव्य कालीन समाज में स्त्रियों के धार्मिक तथा सामाजिक अधिकार पुरूषों के ही समान थे। परिवार और समुदाय में उनके द्वारा कन्या, पत्नी, बधू और माँ के रूप में किए जाने वाले योगदान का सर्वदा महत्व और गौरव स्थापित सत्य है।

स्त्रियों की दशा में युग के अनुरूप परिवर्तन होता रहा है। वैदिक युग से लेकर पूर्वमध्यकाल तक उनकी दशा में अनेक उतार–चढ़ाव दृष्टिगत होते हैं। सूत्र काल तक आते–आते स्त्रियों की दशा में ह्रास के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। इस काल में उनकी स्वतंत्रता बहुत हद तक प्रतिबंधित कर दी गई । ईशा पूर्व दूसरी शदी से लेकर तीसरी शदी ई. तक निरंतर होने वाले विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप न केवल समाज में अव्यवस्था फैली अपितु स्त्रियों की दशा भी प्रभावित हुई। पाँचवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के काल खण्ड में उनकी दशा में निरंतर ह्रास होता गया। यद्यपि कि इस उतार–चढ़ाव के बावजूद भी घर–परिवार संचालन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका बनी रही। प्राचीन काल से लेकर पूर्वमध्य काल तक के उपलब्ध साहित्यिक एवं ऐतिहासिक स्त्रोतों के गहन विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि घर से लेकर समाज के साथ–साथ अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने में उनकी भूमिका को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता।

कुंजीभूत शब्द– सभ्यता–संस्कृति, सामाजिक–अधिकार, अर्थव्यवस्था, आदर्श–मर्यादा, समुदाय, ऐतिहासिक, साहित्यिक

प्रस्तावना– जैसा कि पूर्वोक्त किया जा चुका है कि अति प्राचीन काल में स्त्री–पुरूष दोनों की सामाजिक परिस्थितियाँ समान थीं तथा प्रत्येक धार्मिक–सामाजिक कार्यों में उनकी पारस्परिक सहभागिता होती थी। वैदिक साहित्य में ऐसा उल्लेख मिलता है कि कन्यायें ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए आश्रमों में सहशिक्षा प्राप्त करती थीं। अध्ययन के उपरांत कतिपय विदुषी स्त्रियाँ अध्यापन के कार्य में संलग्न हो जाती थीं। उपनिषदों में ऐसी शिक्षिकाओं के लिए 'उपाध्याया' शब्द प्रयुक्त किया गया है। यद्यपि ऐसी महिलाओं की संख्या काफी कम होती थी।

प्राचीन अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की काफी महत्वपूर्ण भूमिका थी। दरअसल उस समय के आर्थिक जीवन का मुख्य आधार कृषि था। नारियाँ कृषि व श्रम के कार्यों में परिवार का पर्याप्त हाथ बंटाती थीं। सिंधु घाटी सभ्यता के उत्खनन में प्राप्त अवशेषों से स्पष्ट होता है कि महिलाएँ कृषि कार्य में पुरूषों के साथ बीज–बोने, निराई–गुड़ाई, कटाई और फसलों से अनाज निकालने के कार्य में संलग्न रहती थीं। आर्यों की संस्कृति मूलतः ग्रामीण थी अतः उनके आर्थिक जीवन के मूलभूत आधार कृषि और पशुपालन थे। ऐसा प्रतीत होता है कि कृषि और पशुपालन कार्य में स्त्रियाँ–पुरूषों का हाथ बंटाती थी। इसी प्रकार मौर्य–गुप्तकाल से लेकर दसवीं शताब्दी काल तक पुरूषों के साथ–स्त्रियाँ भी आर्थिक गतिविधियों में अपना महती योगदान अन्यान्य रूप में सुनिश्चित करती रही हैं।

अब हम कालक्रमानुसार समाज एवं परिवार के आर्थिक उन्नयन में स्त्रियों की सक्रिय भूमिका की चर्चा करेंगे, जैसा कि इस लेख का अभीष्ट है। प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी कृषि एवं पशुपालन, वस्त्र, उद्योग, हस्तकला एवं शिल्प, घरेलू कार्य, उद्योग–व्यापार और शिक्षा में प्रमुख रूप से दृष्टिगत होती है।

कृषि–कर्म एवं पशुपालन– कृषि प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ थी और इसमें महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। सैंधव सभ्यता के निवासियों का मुख्य उद्यम कृषि–कर्म था। प्रत्येक प्रकार की फसलें उगाए जाने के चिन्ह पुरातात्विक साक्ष्यों से प्रमाणित है। उत्खनन में विशाल अन्नागार का पाया जाना इस बात का संकेत है कि कृषि–उत्पादन प्रभूत मात्रा में होता था। फसलों में गेहूं, जौ, सावां, कोदो, रागी, ज्वार, मटर, तिल, कपास के साथ–साथ फलों में केला, नारियल, खजूर, अनार, नींबू और तरबूज आदि उगाए जाते थे। कृषि के साथ–साथ पशुपालन भी सैंधव निवासियों का धंधा था और स्त्रियाँ कृषि तथा पशुपालन में पुरूषों की बराबर की सहयोगी थीं। सैंधव सभ्यता से इतर वैदिक कालीन संस्कृति मूलतः ग्रामीण थी। अतएव उनके आर्थिक जीवन के मूलभूत आधार कृषि और पशुपालन थे। कृषि योग्य भूमि को उर्वरा अथवा क्षेत्र कहा गया है। लोग बुआई, कटाई, मड़ाई आदि क्रियाओं से परिचित थे। कृषि के साथ–साथ पशुपालन पर भी विशेष बल दिया जाता था। पशुओं में गायों का महत्व सर्वाधिक था और वे विनिमय का माध्यम हुआ करती थीं। स्त्रियाँ दोनों ही कार्यों में पुरूषों का हाथ बंटाती थीं। समाज का ऐसा वर्ग जिसके पास अत्यधिक मात्रा में खेत होता था, वह अपने कृषि कार्य के लिए श्रमिकों को रखता था, जिनमें स्त्रियाँ भी हुआ करती थीं। अथर्ववेद में ऐसी श्रमजीवी दासी का उल्लेख हुआ है, जो धान्य को ओखली में मूसल से साफ करती थी 'तद्वा दास्यर्द्रहस्ता समड्वत उलूखर्लमुसलं शुम्भतापः'। ऋग्वेद में विवरण प्राप्त होता है कि अपाला नामक कन्या अपने पिता के कृषि कार्य में सहयोग प्रदान करती थी।

जातक ग्रंथों से पता चलता है कि श्रम करने वालों को अपने स्वामी द्वारा वेतन, धन या अन्न किसी भी रूप में मिल सकता था। जिसे वे अपने और परिवार के भरण–पोषण में व्यय करते थे। जातक ग्रंथों में ही वर्णित है कि प्रायः सुबह से शाम तक खेतों में काम करने वाले श्रमिकों के साथ स्त्री श्रमजीवी भी खेत में कार्यरत रहती थीं। उपलब्ध विवरणों के आधार पर प्रमाणित होता है कि इस काल की महिलाएँ श्रमिक, दासी और सेविका के रूप में उत्पादन इकाइयों में कार्यरत रहकर मजदूरी प्राप्त करती थीं। स्पष्ट है

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

कि बौद्धकाल या प्राग्मौर्य युग में कृषि ही जनता की आजीविका का प्रमुख स्त्रोत थी और कृषि उत्पादन से लेकर उनके विपणन तक में स्त्रियों का योगदान होता था।

मौर्ययुग एवं मौर्योत्तर युग तक आत–आते लोहे के उपकरणों के भारी मात्रा में प्रयोग के ज्ञान ने कृषि के क्षेत्र में एक तरह से क्रांति ला दिया और उत्पादन बहुत अधिक बढ़ गया। पशु पालन भी बड़े पैमाने पर होने लगा और इन दोनों ही क्षेत्रों में महिलाओं का पर्याप्त योगदान रहा। तद्युगीन साहित्यिक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि अनेक स्त्रियों ने बौद्ध बिहारों और स्तूपों के निर्माण में आर्थिक योगदान दिया। उन्होंने अपने धन से विद्यालय, धर्मशालाएँ व जलकूप बनवाए। गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल अर्थात दसवीं शताब्दी ई. तक भी कृषि एवं पशुपालन आर्थिक जीवन के प्रमुख आधार थे। कुषाण, गुप्त एवं हर्ष कालीन भारत में कृषि तथा व्यापार–वाणिज्य की प्रगति के परिणाम स्वरूप समाज के सीमान्त वर्गों की दशा में भी सुधार हुए तथा स्त्रियाँ भी इससे लाभान्वित हुई। इस काल में स्त्री के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार को मान्यता प्रदान की गयी तथा स्त्रीधन का दायरा अत्यंत विस्तृत कर दिया गया। पुत्र के अभाव में पत्नी का पति के सम्पत्ति पर अधिकार होता था। नारद तथा कात्यायन आदि स्मृतिकार कन्या को भी पिता के सम्पत्ति का अधिकारिणी बताते हैं। कात्यायन ने तो यह व्यवस्था दी है कि अचल सम्पत्ति में भी स्त्री का अधिकार होता है और वह स्त्री धन के साथ इसे भी बेच सकती अथवा बंधक रख सकती है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि कृषि एवं पशुपालन के कार्य में स्त्रियाँ अपना महती योगदान देकर अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने में सहायक होती थीं।

वस्त्र, हस्तकला, एवं शिल्प– प्राचीन भारतीय नारियों का वस्त्र उद्योग के क्षेत्र में अतुलनीय योगदान रहा था। ऋृग्वेद में कपड़ा बनाने की विस्तृत चर्चा की गई है। वहाँ पर कपड़ा बुनने वाली दो स्त्रियों की उपमा रात और दिन से की गई है। वस्त्र बुनने में करघे का इस्तेमाल किया जाता था, जिसे 'तसर' कहा गया है। 'समानि चकु: तसराणि ओतवे'। ताना को 'ओत' और बाना को 'तंतु' कहते थे– न अहं तंतुं न विजानामि ओतुं न वयन्ति। उल्लेख मिलता है कि वस्त्र बुनने का कार्य प्रायः युवा स्त्रियाँ किया करती थीं 'उषसानक्त वय्या इव रण्विते तुंतुं ततं संवयंती।' एक स्थल पर यह संदर्भ मिलता है कि स्त्री अपने अधूरे छोड़े गए बुनने के काम को पूरा करने के निमित्त पुनः बुनने के लिए गई–'पुनः स अव्यत विततं वयन्ति।' एक मंत्र से विदित होता है कि माँ अपनी संतान के लिए वस्त्र बुन रही थी 'वस्त्रापुत्राय मातरः वयन्ति।

शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित है कि सूत कातने का कार्य प्रायः स्त्रियाँ ही करती थीं 'तद्वा एतत्स्त्रीणां कर्म यदृर्णा सूत्रम्'। तैतरीय ब्राह्मण में 'कर्घा' के लिए 'वेमन' शब्द का उल्लेख मिलता है जिससे कपड़ा बुना जाता था। पंचविंश ब्राह्मण में 'वयत्री' शब्द का उल्लेख स्पष्ट करता है कि स्त्रियाँ वस्त्र बुनने का काम करती थीं। वाजसनेयी संहिता में वर्णित है कि स्त्रियाँ कढ़ाई–बुनाई के कार्य में निपुण होती थीं जिन्हें 'पेशस्कारी' शब्द से अभिहित किया गया है। इस युग में विभिन्न रंगों के वस्त्र तैयार किए जाते थे और वस्त्र रंगाई का कार्य ज्यादातर स्त्रियाँ ही करती थीं जिसके लिए उन्हें 'रजयित्री' कहा गया है। वस्त्र रंगाई के कार्य में लाल नीले, पीले, गुलाब आदि विभिन्न प्रकार के रंग प्रयोग में लाए जाते थे। चटकीले रंग भी कपड़ों पर चढ़ाए जाते थे। पाणिनि ने हरिद्रा और महारजन रंग के प्रयोग का भी उल्लेख किया है। ऋग्वेद में अनेक प्रकार के सुंदर वस्त्र बुने जाने का उल्लेख हुआ है। यह भी विदित होता है कि बुनाई के लिए उस समय धुनाई विषयक पाठशालाएँ थीं जहाँ बुनाई कला की श्रेष्ठ शिक्षा दी जाती थीः

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एक शतं देकर्मेभिरायतः ।
इसे वयन्ति पितरोय आययुः प्रवयापवतेत्यासते तते।।

यह भी उल्लेख मिलता है कि उस समय ऊन के वस्त्र अधिक बुने जाते थे 'ऊर्णमुद्राः विप्रथस्व।'

वस्त्र बुनने वाले के लिए प्राचीन नाम 'तन्तुवाय' का ही प्रचलन था। पाणिनि ने बुनकर के करधे को 'आवाय' या 'तंत्र' और ढरकी की 'प्रवीणी' शब्द से अभिहित किया है–'आवयन्ति अस्मिन'। तुंतुवाय शलाका'। करघे से तुरंत बुने हुए कपड़े के थान का भी उल्लेख मिलता है। शैफलिक (पारिजात से रंगा हुआ), माध्यमिक (चिन्तौड़ का बना हुआ), शाटक (मथुरा का बना हुआ) आदि विख्यात वस्त्र के प्रकारों का उल्लेख पतंजलि ने किया है, जो तद्युगीन समाज में अत्यधिक प्रचलित थे। इन वस्त्रों के निर्माण में स्त्रियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। मौर्य एवं मौर्योत्तर काल में भी उपलब्ध विवरणों से स्पष्ट होता है कि सूत कातने, बुनने, वस्त्र बनाने और रंगने आदि के काम में स्त्रियाँ पर्याप्त योगदान देती थीं। कौटिल्य के समय में अनेक प्रकार के वस्त्र तन्तुवाय बुनते थे। क्षौम (स्थूल रेशमी वस्त्र), दुकूल (महीन रेशमी वस्त्र), क्रिमितान, कंकट (सूती) आदि विभिन्न प्रकार के वस्त्र उस समय प्रचलन में थे–'क्षौमंदकूल मिमितान कंकट हरिताल'। कौटिल्य के अनुसार ऊन, बल्कल (छाल के रेशे), कपास, सेमर की रूई, सन और क्षौम के सूत विधवा, अंगहीन, अनाथ कन्याएँ, सन्यासिनियां, अपराधिनियाँ, वेश्याओं की वृद्ध माताएँ, देवदासियाँ और राजदासियाँ कातती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि अनाथ स्त्रियाँ इन सभी कार्यों को करते हुए अपनी आजीविका चलाती थीं।

परवर्ती कालों में भी कताई और बुनाई का कार्य अधिकतर स्त्रियाँ ही करती थीं। बांणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है कि राज्यश्री के विवाह के अवसर पर क्षुमा, रूई, दुकूल (रेशम का छाल), लालातन्तु, मलमल और नेत्र–रेशम के वस्त्र तैयार कराए गए थे। उसके अनुसार रंगीन वस्त्र (पुलक बन्ध), और फूलदार रेशम (पुष्पपट्ट) बनाए जाते थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी रूई, क्षुमा और ऊन द्वारा निर्मित वस्त्रों का उल्लेख अपने यात्रा–वृत्तांत में किया है। इसी प्रकार अन्य साहित्यिक साक्ष्यों से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय वाराणसी श्रेष्ठ रेशमी वस्त्रों के लिए विख्यात थी। बढ़िया किस्म का धारीदार सूती कपड़ा मथुरा में तैयार होता था। अरब यात्री सुलेमान बंगाल के मलमल के संबंध में लिखता है कि यह इतनी महीन होती थी कि अंगूठी के बीच से पूरा थान निकल सकता था। मानसोल्लास में उल्लिखित है कि मुल्तान, गुजरात और कलिंग में बहुत अच्छा कपड़ा बनाया जाता था। अन्य स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि कोंकण प्रदेश, मालवा और मथुरा भी वस्त्रोद्योग के प्रमुख केन्द्र थे। चाउजुकुआ के अनुसार गुजरात में छींट बनाई जाती थी तथा मालाबार में छींट और सफेद सूती कपड़ा बनाया जाता था। इब्न सईद के अनुसार पाण्डव राज्य में रंगीन या सूती कपड़ा विदेशों को भेजा जाता था। मेधातिथि ने लिखा है कि जिन स्त्रियों को उनके पति ने भरण–पोषण के लिए आश्यक धन नहीं छोड़ा हो वे कताई और कपड़े की जाली बनाकर अपना निर्वाह कर सकती हैं। विधवा भी इन व्यवसायों को अपनाकर अपना भरण–पोषण कर सकती हैं।

इन विवरणों से स्पष्ट है कि समाज के हर वर्ग की महिलाएं इस प्रकार के व्यवसायों में अपनी सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित करती थीं। इस प्रकार पुरातात्विक और साहित्यिक साक्ष्यों से प्रमाणित होता है कि शिल्प एवं हस्तकला में प्राचीन नारियाँ पर्याप्त दक्ष होती थीं। वे न केवल विविध प्रकार के मिट्टी के वर्तन, सजावटी सामग्री, खिलौने, आभूषण आदि बनाती थीं अपितु उनका विपणन भी करती थीं। सैंधव सभ्यता के लोग कताई–बुनाई–कढ़ाई–रंगाई एवं विभिन्न प्रकार के मृदभाण्ड, खिलौने, कृषि संबंधी उपकरण, अस्त्र–शस्त्र, आभूषण आदि बनाने की कला से परिचित थे और इन कार्यों में महिलाएँ बराबर की सहभागी होती थीं। वैदिक एवं

वैदिकोत्तर युगीन भारत में अनेक प्रकार के शिल्पों जैसे–मणियों के आभूषण बनाना, टोकरी बनाना, रस्सी बनाना, कपड़ों को रंगना, धनुष बनाना आदि का भी विकास हो चुका था। ऋग्वेद में कई प्रकार के हस्तशिल्पों का उल्लेख है, जैसे–सीना, चटाई बनाना आदि। ऐसा प्रतीत होता है कि इन सभी कार्यों में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। इस युग में बांस का काम करने वाली स्त्रियाँ 'कंटकीकारी' और बेंत की टोकरी बनाने वाली 'विदलकारी' के नाम से जानी जाती थीं। यजुर्वेद में हिरण्य, अयस, श्याम, सीस और त्रपु जैसी अनेक धातुओं का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि उस युग में विभिन्न धातुओं के शिल्पकार थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित है कि स्त्रियाँ सिक्कों की छपाई, कर संग्रह, शिल्प कला और वस्त्र निर्माण में संलग्न थीं। यह भी उल्लेख मिलता है कि कुछ महिलाएँ व्यापारिक श्रेणियों की सदस्य थीं। वे कर देती थीं और स्वतंत्र रूप से व्यापारिक गतिविधियाँ संचालित करती थीं।

व्यापार वाणिज्य– इस काल में कृषि एवं पशुपालन के साथ–साथ व्यापार–वाणिज्य भी उन्नति पर थे। महाभारत में अनेक व्यवसायियों का उल्लेख मिलता है, जो विभिन्न स्थानों पर श्रेणियां बनाकर निवास करते थे। आंतरिक और बाह्य दोनों ही व्यापार का उल्लेख प्राप्त होता है। कतिपय बौद्ध ग्रंथों में उल्लिखित है कि महिलाएँ व्यापारी, वणिजा और कारीगर के रूप में कार्य करती थीं। वे वस्त्र, आभूषण, सौन्दर्य प्रसाधन और मसालों का व्यापार करती थीं। दाई, वैद्य, शिक्षिका और रसोइया के रूप में सेवा देकर महिलाएँ अर्थोपार्जन करती थीं। महिलाएँ गायों की देखभाल, दुग्ध–संग्रह, दही, घी और मक्खन तैयार करने में माहिर थीं। दूध निकालने का काम भी स्त्रियाँ करती थीं, इसलिए उन्हें 'दुहिता' शब्द से अभिहित किया गया है। ये उत्पाद स्थानीय बाजारों में बेंचे जाते थे। ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों में महिलाएँ, लकड़ी, फल, औषधियाँ, मधु आदि एकत्र कर पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ–साथ उनका विक्रय भी करती थीं। बांस, घास–फूस, मिट्टी आदि से घरेलू उपयोग की वस्तुएँ बनाने में महिलाएँ विशेषज्ञ होती थीं। ये वस्तुएँ बाजारों में बेंची भी जाती थीं।

धार्मिक अनुष्ठानों में स्त्रियों की सक्रिय सहभागिता भी अर्थव्यवस्था को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती थी। वे मंदिरों में दीप, पुष्प, वस्त्र, खाद्य सामग्री आदि तैयार करती थीं, जो स्थानीय उद्योगों को बढ़ावा देने में सहायक होता था। कई मंदिरों में महिला सेविकाएँ होती थीं, जिन्हें वेतन या दान स्वरूप धन प्राप्त होता था। दासी के रूप में कार्य करने वाली स्त्रियों को भी पारितोषिक स्वरूप धन, वस्त्र, अन्नादि प्रदान किया जाता था, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति को संबल मिलता था।

कतिपय महिलाओं की काशी, मगध, पाटलिपुत्र, उज्जयिनी, ताम्रलिप्ति जैसे प्रमुख व्यापारिक नगरों में व्यापारिक भागीदारी के प्रमाण मिलते हैं। वे गहने, वस्त्र इत्र और सौन्दर्य प्रसाधन जैसी वस्तुओं का विनिमय करती थीं।

अध्ययन–अध्यापन : स्त्रियाँ अध्ययन–अध्यापन के कार्य में भी पूर्णतया संलग्न रहती थीं। निःसंदेह अध्ययन के उपरांत अध्यापन का पेशा आर्थिक उपार्जन का माध्यम हुआ करता था। चौथी शताब्दी ई. पू. तक कन्यायें वैदिक ग्रंथ पढ़ती थीं। वेदों के अतिरिक्त कुछ कन्याये मीमांशा जैसे शुष्क विषय का अध्ययन करती थीं जिसमें वैदिक यज्ञों संबंधी अनेक समस्याओं का विवेचन है। महाभाष्य से हमें ज्ञात होता है कि जो कन्यायें 'काशकृत्स्न' रचित मीमांशा के ग्रंथ पढ़ती थीं वे 'काशकृत्स्ना' कहलाती अध्यापिकाओं को उस समय 'उपाध्याया' कहा गया है– 'उपेत्याधीते आस्याः सा उपाध्याया। ये उपाध्याया छात्राओं को पढ़ाया करती थीं। इनकी अलग–अलग शिक्षाशालाएँ हुआ करती थीं जहाँ कन्याएँ जाकर शिक्षा ग्रहण करती थीं। ऐसी महिला शिक्षाशालाओं का प्रबंध 'उपाध्यायें' ही करती थीं। पाणिनी ने महिला शिक्षणशाला का उल्लेख किया है– 'छात्र्यादयः शालायाम्'। इसके साथ ही गृह में निवास करती हुई कन्याएँ गार्हस्थिक शिक्षा से अवगत हुआ करती थीं।

यद्यपि पूर्व मध्य युग तक आते–आते संभ्रांत घरों की स्त्रियों को छोड़कर सामान्य घरों की स्त्रियों की शिक्षा केवल घर तक सीमित हो गई। धनी परिवारों की कन्याओं को शिक्षा पूर्ववत प्राप्त होती रही। गाथा सत्पशती नामक ग्रंथ से अनेक बिदुषी स्त्रियों का पता चलता है। रेखा, टोहा, माधवी, अनुलक्ष्मी, पाहवी, शशिप्रभा जैसी कवियत्रियाँ अपनी प्रतिभा और कल्पना शक्ति के लिए विख्यात थीं। कर्पूरमंजरी से ज्ञात होता है कि इस युग में अनेक ऐसी प्रज्ञा सम्पन्न नारियाँ हुईं, जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट रचना शैली और काव्यकला से साहित्यिक योगदान दिया। कवि राजशेखर की पत्नी अवंति सुंदरी उत्कृष्ट कवियत्री और टीकाकार थी। मण्डन मिश्र और शंकराचार्य के मध्य हुए शास्त्रार्थ की निर्णायिका मंडन मिश्र की पत्नी थी जो जर्क, मीमांशा, वेदांत और साहित्य में पूर्ण पारंगत थी– 'विधाय भार्या विदुषी सदस्यां विधीयतां वादकथा सुधीन्द्र'। उक्त विवरण से स्पष्ट है कि अध्ययन–अध्यापन का क्षेत्र भी स्त्रियों के लिए आर्थिक उन्नयन का आधार था।

ललित एवं नृत्य कला– महिलाएं संगीत, नृत्य और अभिनय जैसी कलाओं में भी पारंगत होती थीं और जिनका उपयोग राजाओं के दरबार, उत्सवों और अन्य सामाजिक प्रयोजनों में होता था। इन कलाओं से वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भी होती थीं। वह ललित कलाओं में निपुण होती थीं और कौशल पूर्वक नृत्य करती थीं तथा ऋग्वेद की ऋचाओं का गान करती थीं। ललित कलाओं एवं नृत्य में निपुण महिलाएं अपनी कला से लोगों का मनोरंजन कर अर्थोपार्जन करती थीं और वैभवपूर्ण जीवन जीती थीं। ऐसी महिलाएं गणिका कहलाती थीं और युगीन नगर का उल्लास तथा विलास इन गणिकाओं के संयोग से मुखारित होता था। यह भी उल्लेख मिलता है कि यह गणिकाएं प्रति रात्रि अपने संगीत प्रदर्शन से सहस्राधिक मुद्राएं अर्जित कर लेती थीं। गणिकाओं और देवदासियों का अस्तित्व पूर्व मध्यकाल तक समाज में बना रहा। कामसूत्र में वर्णित है की धनी परिवारों की कन्याओं को संगीत, नृत्य, चित्रकला, माला एवं खिलौने बनाने तथा घर की सजावट करने आदि की शिक्षा दी जाती थी। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि ललित एवं नृत्य कला के माध्यम से ऐसी दक्ष महिलाएं पारिवारिक और सामाजिक अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करती थीं।

इसके अतिरिक्त दक्षिण के नागार्जुनकोंडा और अमरावती शिलालेखों में अनेक स्त्रियों द्वारा मंदिर निर्माण, विहारों, जलाशयों एवं शिल्प निर्माण हेतु दान दिए जाने का उल्लेख आता है जो उनके संपत्ति अधिकार और आर्थिक स्वतंत्रता का सूचक है। गुप्तकाल में महिलाएं घरों में सूत कातने, कपड़ा बुनने, रंगाई करने आदि में लिप्त रहती थीं। वे कवियत्री, गायिका, नर्तकी, चित्रकार के रूप में योगदान देती थीं जिससे वह न केवल ख्याति प्राप्त करती थीं बल्कि आर्थिक रूप से स्वतंत्र भी होती थीं।

निष्कर्ष– उपर्युक्त विवरण के आलोक में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका केवल पारंपरिक घरेलू कार्यों अथवा विशुद्ध गृहणी या दासी के रूप तक ही सीमित नहीं थी अपितु वे तद्युगीन अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों के कंधा से कंधा मिलाकर सक्रिय रूप से सम्मिलित थीं। उन्होंने कृषि, पशुपालन, वस्त्र निर्माण, कला–शिल्प, अध्ययन–अध्यापन, ललित एवं नृत्य कला, व्यापार–वाणिज्य आदि के क्षेत्र में अपनी महती भूमिका का निर्वहन करते हुए परिवार एवं समाज को आर्थिक रूप से सम्मुनत एवं सशक्त बनाया। उपलब्ध अभिलेखीय एवं साहित्यिक स्रोत इस बात का स्पष्ट प्रमाण देते हैं कि उस समय की नारियां कहीं अधिक स्वायत्त, स्वावलंबी और आर्थिक दृष्टि से मजबूत थीं। यद्यपि कि समय के साथ नरियों की स्थिति

ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

में व्यापक परिवर्तन आए हैं, किंतु यह निर्विवाद सच्चाई है कि प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था के निर्माण में नारियों की सक्रियता और समर्पण ने समाज को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाने में जो योगदान दिया, वह आज भी भारतीय समाज के विकास की मजबूत नींव के रूप में महत्वपूर्ण है। यद्यपि अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में योगदान के साथ–साथ प्राचीन नारियों द्वारा समाज और परिवार के प्रति त्याग और समर्पण का जो भाव प्रदर्शित किया गया वह आज के परिप्रेक्ष्य में कहीं न कहीं अप्रासंगिक होता जा रहा है। निःसंदेह विज्ञान और तकनीकी के विकास के फलस्वरुप आज की नारियां आर्थिक स्वावलंबन की दिशा में काफी प्रगति कर ली हैं और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी भूमिका में हैं। किंतु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उनके लिए प्राचीन नारियों की भांति परिवार और समाज में संतुलन और समरसता स्थापन के भाव का अपने भीतर समावेशन सर्वथा समीचीन और उपयुक्त होने के साथ–साथ सुख एवं शांतिप्रदायक सिद्ध होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शतपथ ब्रा0 5, 2, 1, 10, मनु. 9,45 अ‚ुत ग्रंथमाला कार्यालय, वाराणसी।
2. महा. अनु. पर्व, 15, गीता प्रेस, गोरखपुर ।
3. पोजीशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशनः, ए. एस. अल्तेकर, पृ. 14 मोतीलाल बनारसी दास पब्लि. लि.,दिल्ली ।
4. अथर्ववेद 12, 3, 13. वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, गीता प्रेस, गोरखपुर।
5. ऋग्वेद 9.91.5.6.
6. जातक, 2.139.3.129 .
7. वही, 1, 111, 3, 446.
8. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, डॉ. के.सी. श्रीवास्तव, प्रका. ुनाईटेड बुक डिपो, युनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, पृ 466.
9. ऋग्वेद 2, 38– वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1933–51, गीता प्रेस, गोरखपुर।
10. वही, 10, 136, 2.
11. वही, 10, 26, 6.
12. वही, 3, 3, 6,.
13. वही, 3, 85, 5.
14. वही, 5, 47, 6.
15. शतपथ ब्रा. 5, 3, 5, 18, अयुत ग्रंथमाला कार्यालय , वाराणसी।
16. तैतरी, ब्रा. 2, 1, 4, 2 गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर।
17. पंच. ब्रा. 2, 1, 4, 2.
18. वाज. संहिता, 30, 1.
19. पाणिनि अष्टा, 5, 4, 32, 8, 3, 97, 3, 2, 2 निर्णय सागर प्रेस, मुंबई।
20. ऋग्वेद 14 130, 1.
21. वही 4, 22, 2, 5, 5, 4.
22. पाणिनि अष्टा, 3, 3, 112, 5, 4, 160.
23. पतंजलि, महाभाष्, 5.3. 55, संपादक–एफ. कीलहार्न, मुंबई.।
24. अर्थशास्त्र; 2. 23, संपादक–आर शाम शास्त्री, मैसूर।
25. बांणभट्ट, हर्षचरित, अ., कोस्मो पब्लिकेशन, नई दिल्ली.।
26. वाटर्स; 1, 148, 2, 151, 267.
27. मानसोल्लास; 3, 1017–20. भारतीय विद्याभवन पब्लि., मुंबई।
28. चाउजुकुआ, 92, 88.
29. अबुलफिदा, नैनार, 55–56 में उद्धृत।
30. मेघातिथि टीका मनुः 9, 75, मोती लाल–बनारसीदास, पब्लि, लि. जवाहर नगर, दिल्ली।
31. ऐशिं‚ट इंडि‚ा, राधाकुमुद मुखर्जी पृ. 75, राजकमल पब्लि, नेताजी सुभाषचंद्र मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली।
32. वैदिक एज, आर सी मजूमदार, भारती, विद्या भवन, पब्लि. मुंबई पृ. 40.
33. ऐतरे, ब्रा०, 3, 30, 3; 4.25. 8–9. वृह. उप. 1, 4, 12 गीता प्रेस, गोरखपुर।
34. ‚जु, 18. 13, गीताप्रेस, गोरखपुर।
35. पतंजलि, 4, 1, 14, 3, 155.
36. जातक, 301.
37. महाभाष्, पतंजलि 3.822.
38. पाणिनी, 6.2–46.
39. गाथा सप्तशती, हॉल, 1, 87, 90, मोतीलाल– बनारसीदास, पब्लि, लि. जवाहर नगर, दिल्ली।
40. कर्पूर मंजरी, राज शेखर, 1.11, मोतीलाल– बनारसीदास, पब्लि, लि. जवाहर नगर, दिल्ली।
41. शंकरादिग्विज,, 8.51.
42. ऋग्वेद, 1, 91, 4, 10, 71, 11.
43. महावग्ग, 8.1.2.
44. जातक, 4.20–40, महावग्ग, 6.30.2; 4.30.5.
45. जातक 4, पृ. 249, कणवेर जातक, 318.

*****